श्रीगुरूपदेश

श्रीगुरु के उपदेश

अमी बन्सल द्वारा लिखित व्याख्या

'श्रीगुरु-उपासना' के अन्तर्गत, आज, २९ जुलाई, २०२६ के लिए कथन है, श्रीगुरूपदेश—'श्रीगुरु के उपदेश'। गुरुपूर्णिमा के पावन दिवस पर अपने बोध में अवस्थित करने के लिए कितना सटीक कथन है यह!

संस्कृत शब्द 'उपदेश' दो भागों से मिलकर बना है। पहला भाग है, उपसर्ग 'उप' जो दर्शाता है, किसी व्यक्ति या वस्तु की ओर बढ़ने या उसके समीप होने को। 'देश' शब्द मूल धातु 'दिश्' से बना है, जिसका अर्थ है, 'संकेत करना,' 'मार्गदर्शित करना,' या 'दिखाना'। संयुक्त शब्द 'उपदेश' उसे दर्शाता है जो व्यक्ति को किसी विशिष्ट चीज़ की ओर निर्देशित या मार्गदर्शित करता है। अतः, 'उपदेश' का अनुवाद इस तरह किया जा सकता है, 'मार्गदर्शन,' 'सिखावनी,' 'दिशानिर्देश' या 'परामर्श'।

भारतीय शास्त्रों में 'उपदेश' को विशेषकर श्रीगुरु के मार्गदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। यह वह मार्गदर्शन है जिसे यदि विद्यार्थी अर्थात् श्रीगुरु का शिष्य समझ ले और आत्मसात् कर सक्रियता से इसका पालन करे तो यह उसे भगवान की ओर, आत्मज्ञान की ओर ले जाता है।

भारत की शास्त्रीय परम्परा के सबसे प्रमुख उपदेशों में से कुछ उपदेश, उपनिषदों में पाए जाते हैं। इनमें शामिल हैं, महावाक्य, उदाहरण के लिए, 'तत्त्वमसि' यानी 'तुम वह हो।' 'उपनिषद्' का शाब्दिक अर्थ है, 'समीप बैठना।' 'उपनिषद्' और 'उपदेश' शब्दों को एक-साथ रखकर देखने से मन में एक अत्यन्त सुन्दर छवि उभरती है।

श्रद्धा-भक्ति व समर्पणभाव से आत्मसाक्षात्कारी गुरु के समीप बैठकर, एक शिष्य उपदेश ग्रहण करता है—अर्थात् शिष्य वे दिशानिर्देश और मार्गदर्शन ग्रहण करता है जो उसे आत्मज्ञान की ओर ले जाते हैं।

उपनिषद्काल में, श्रीगुरु के उपदेश केवल उन्हीं शिष्यों को मिलते थे जिनमें श्रीगुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करने की सच्ची उत्कण्ठा होती थी और जो आत्मज्ञान पाना चाहते थे। अतः, यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि उन उपदेशों को समझने के लिए मूल रूप से, यह आवश्यक है कि शिष्य उनके

साथ सक्रियता से संलग्न हो। श्रीगुरु का मार्गदर्शन शिष्य के अन्दर गहराई तक पैठ सके, शिष्य को वास्तव में लक्ष्य की ओर ले जा सके, इसके लिए शिष्य के अन्दर अध्ययन करने की व सीखने की उत्कट इच्छा होनी चाहिए। शिष्य में श्रीगुरु के उपदेश, श्रीगुरु के मार्गदर्शन के अनुरूप जीवन जीने की गहरी ललक भी होनी चाहिए। शिष्य में 'मुमुक्षुत्व' होना चाहिए; 'मुमुक्षुत्व' यानी भगवान को जानने की, मोक्षप्राप्ति की अदम्य व दृढ़ लालसा।

उपदेश तभी प्रभावी व सार्थक होता है जब गुरु और शिष्य के बीच समीपता हो। अतः, शिष्य जब श्रीगुरु के समीप आता है, तभी वह श्रीगुरु के उपदेश की वास्तविक शक्ति की अनुभूति करता है। आप पूछ सकते हैं कि 'श्रीगुरु के समीप आने' का क्या अर्थ है। किन-किन तरीक़ों द्वारा एक शिष्य ऐसा कर सकता है? सच कहें तो ऐसा करने के अनेक तरीक़े हैं—उदाहरणार्थ, इनमें शामिल हैं, श्रीगुरु के प्रति गहरे आदर, समर्पणभाव व श्रद्धा-भक्ति का विकास करना, श्रीगुरु की सेवा करने की ललक रखना, श्रीगुरु की सिखावनियों को ध्यानपूर्वक सुनना और अपने समय को इस तरह नियोजित करना, ताकि अध्ययन व अभ्यास हमारी प्राथमिकता बनें।

प्राचीन काल में, श्रीगुरु के उपदेश प्राप्त करने के लिए शिष्यों को भौतिक रूप से श्रीगुरु के निकट होना होता था। आजकल, सिद्धयोग पथ पर, टेक्नोलॉजी की सहायता से हम जहाँ कहीं भी हों वहीं, अपनी श्रीगुरु के उपदेश ग्रहण कर सकते हैं। भौतिक रूप से हम जहाँ भी हों, वह हमारे लिए बाधा नहीं बनता। जब हम सिद्धयोग पथ की वेबसाइट देखें तो हम यह कल्पना कर सकते हैं कि हम अपनी श्रीगुरु के चरणकमलों में बैठे हैं और श्रीगुरु की सिखावनियाँ ग्रहण करने के लिए तत्पर हैं। और इन सिखावनियों को ग्रहण कर, हम उन्हें अपने बोध में बनाए रखें व उन सिखावनियों के निरन्तर अध्ययन, चिन्तन-मनन और परिपालन द्वारा हम उन्हें अपने जीवन में साकार करें।

***

भारतीय शास्त्रों में 'उपदेश' का एक अन्य अर्थ मिलता है, और वह है, 'दीक्षा'। इससे हम यह समझ सकते हैं कि यद्यपि शब्द प्रायः 'श्रीगुरूपदेश' के वाहक होते हैं, तथापि उसकी शक्ति उन शब्दों से परे होती है। श्रीगुरु का उपदेश उनकी रूपान्तरणकारी शक्ति का शिष्य में प्रत्यक्ष रूप से सम्प्रेषण है। यदि शिष्य इस उपदेश को, इस मार्गदर्शन को हृदयंगम करने का निश्चय करता है, यदि वह इसका अध्ययन करने व इसे अपने जीवन में उतारने के लिए दीर्घकाल तक प्रयत्न करता है तो यह रहस्यमय प्रज्ञान धीरे-धीरे उसे सभी सीमितताओं से मुक्त कर देता है—अर्थात् यह उसे उन सभी चीज़ों से मुक्त कर देता है जिनके कारण वह स्वयं को तुच्छ समझता है, जैसे ख़ुद की योग्यताओं या क्षमताओं पर

सन्देह करना, अयोग्यता का भाव व भय। कृपाशक्ति से परिपूर्ण, श्रीगुरु के उपदेश समस्त भ्रान्तियों और मिथ्या तादात्म्य यानी स्वयं के बारे में ग़लत पहचान की जड़ पर ही सीधा प्रहार करते हैं।

आत्मा ही हमारा सच्चा स्वरूप है, इस तथ्य के प्रति अज्ञानता एक ऐसी ग़लत अवधारणा से उपजती है जिसकी जड़ें जन्मजन्मान्तरों से हमारे अन्दर गहरी जमी हुई हैं। केवल सामान्य या सांसारिक ज्ञान अथवा कार्य इस अज्ञान को नष्ट नहीं कर सकते। यही कारण है कि श्रीगुरु के उपदेश अनमोल हैं और इसीलिए यह अनिवार्य है कि शिष्य इनके महत्त्व को पहचाने व उसे अंगीकार करे।

एक शिष्य के लिए यह विचार करना हमेशा हितकारी होता है कि वह श्रीगुरु के उपदेश को किस प्रकार ग्रहण कर रहा है। शिष्य स्वयं से पूछ सकता है : "श्रीगुरु जो कह रही हैं, वह मेरे लिए और मेरे जीवन के लिए उपयुक्त है—ऐसी समझ रखते हुए, क्या मैं उनके शब्दों को सच्चे अर्थों में स्वीकार कर रहा हूँ? श्रीगुरु मुझे जो सिखा रही हैं, क्या मैं उसे समझ रहा हूँ? श्रीगुरु जो कह रही हैं, क्या मैं उसे समग्र रूप से सुन रहा हूँ? या फिर, क्या मैं केवल उसी बात को चुनकर ग्रहण कर रहा हूँ जो मुझे किसी विशिष्ट क्षण में प्रभावित कर रही है? क्या मैं केवल उन्हीं भागों पर ध्यान केन्द्रित कर रहा हूँ जिन्हें कार्यान्वित करना मुझे सरल लगता है, या मैं उन भागों पर केन्द्रण कर रहा हूँ जो किसी विशेष समय पर मुझे अपने लिए 'आवश्यक' लगते हैं?"

सिद्धयोग पथ पर एक विद्यार्थी होने के नाते, हमें अपने आप से प्रायः इस प्रकार के प्रश्न पूछते रहना चाहिए और इनके उत्तरों को लेकर हमें खुद के साथ ईमानदार रहना चाहिए। हमें अपनी साधना का पूर्ण उत्तरदायित्व लेना चाहिए। जब हम श्रीगुरु के उपदेश पर पूर्ण विश्वास रखते हैं और पूरी मेहनत व लगन से उस पर कार्य करते हैं तो यह हमें प्रबलता से प्रेरित करता है कि हम गहराई से आत्म-अन्वेषण करें। और दिन प्रतिदिन, हम जैसे-जैसे यह अन्वेषण करते जाते हैं, वैसे-वैसे हमें यह अनुभव होने लगता है कि हमारे अन्दर धीरे-धीरे एक रूपान्तरण आने लगा है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म, यानी सर्वात्मा 'नेति-नेति' है अर्थात्, 'यह नहीं, यह नहीं'।[१] बात यह है कि जिन बाहरी उपाधियों को हम आत्मा के साथ जोड़ते हैं, उनके आधार पर आत्मा को परिभाषित नहीं किया जा सकता और इसीलिए *आत्मानुभूति* के समान अन्य कोई अनुभूति है ही नहीं। अतः, साधना में श्रीगुरूपदेशरूपी मार्गदर्शन का अनुसरण करते-करते, हम कौन या क्या *नहीं* हैं, उस पहचान की परतें अन्ततः हट जाती हैं और हमारा सच्चा स्वरूप जगमगा उठता है।

श्रीगुरुमाई के उपदेश हमें विभिन्न रूपों में प्राप्त होते हैं। श्रीगुरुमाई की मौखिक व लिखित सिखावनियों में उनके उपदेश, उनका मार्गदर्शन निहित है, उनके मौन में और यहाँ तक कि

साधारण-से लगने वाले उनके वार्तालापों और हावभावों में भी उनके उपदेश विद्यमान हैं। हमें ध्यान में, स्वप्न में और प्रकृति में श्रीगुरुमाई के जो अनुभव होते हैं, उनमें भी उनके उपदेश निहित हो सकते हैं। श्रीगुरुमाई के विद्यार्थी होने के नाते यह हमारा पावन उत्तरदायित्व है कि वे जिन-जिन रूपों में हमारे साथ संवाद करती हैं, उन सभी रूपों में हम उनके उपदेशों को पहचानें, समझें और उन उपदेशों का अध्ययन करने के लिए, उनके साथ कार्य करने के लिए तत्पर व तैयार रहें।

वर्षों पूर्व, ध्यान में मैंने स्वयं को गुरुदेव सिद्धपीठ में गुरुसेवा करते हुए देखा था। मैं जिस कमरे में थी, गुरुमाई जी वहाँ आईं। मैं आदरपूर्वक खड़ी हो गई। उनके चारों ओर स्वर्णिम प्रकाश-पुंज जगमगा रहा था। फिर उन्होंने श्रीगुरु के उपदेश, श्रीगुरु के मार्गदर्शन के स्वरूप के बारे में मुझे समझाया।

गुरुमाई जी ने कहा, "श्रीगुरु के उपदेशों का, श्रीगुरु के मार्गदर्शन का उदय भगवान के प्रकाश से होता है। जब एक व्यक्ति उस मार्गदर्शन को सचमुच आत्मसात् करता है तो वह मार्गदर्शन एक बार पुनः भगवान के प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार, श्रीगुरु का मार्गदर्शन साधक को दिव्य प्रकाश की अनुभूति कराता है।"

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] बृहदारण्यकोपनिषद्, २.३.६।